P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-1* ISSUE-10* January- 2017
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

हिन्दी कवि राजकमल चौधरी के काव्य–दोष एवं उनका परिहार

आलोक कुमार पाण्डेय
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
जयप्रकाश विश्वविद्यालय,
छपरा, बिहार

सारांश

राजकमल चौधरी की हिंदी कविता में आत्मग्रस्तता के स्थान पर व्यक्ति–सत्य और सामाज–सत्य का समन्वय पाया जाता है। उनके काव्य की सबसे बड़ी शक्ति उसका प्रसंगगर्भत्व है। वह अपने यथार्थ संदर्भों के कारण जीवंत है। कविता की अंतर्वस्तु के साथ ही उसकी काव्यभाषा में युग की नंगी सच्चाई के संवहन की क्षमता है। उनकी कविता मानवीय दुर्बलताओं, समाज की विकृतियों और विद्रूपताओं के चित्रण के कारण अत्यधिक यथार्थपरक हो गयी है। यहाँ आदर्शवादी दृष्टिकोण, परंपरागत मूल्य–दृष्टि और रोमांटिक चेतना के लिए अवकाश नहीं है। व्यक्ति–जीवन एवं सामाजिक–जीवन का यथार्थ ही उनकी कविता का मौलिक आधार है। नवीन सौंदर्याभिरूचि के बिना उनके काव्य का सम्यक् बोध प्राप्त करना संभव नहीं है। यह सौंदर्यबोध भाव और भाषा– दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इस दृष्टि से देखने पर राजकमल चौधरी के काव्य को छद्म दोषारोपण का शिकार माना जा सकता है।

मुख्य शब्द :आत्मस्थापन, अंतर्विरोध, विरोधाभास, परिहार, परंपरा–भंजन, जड़ीभूत सौंदर्याभिरूचि, नव सौंदर्यशास्त्र, नवाचार, स्वप्न–भंग–जन्य आक्रोश, भदेसपन, काव्य–दोष, रोमानी आदर्षवाद, तथ्यानुमोदित मूल्यांकन, आत्मग्रस्तता,प्रसंगगर्भत्व, अंगांगी भाव, मुखौटाधर्मिता, अतियथार्थवाद, यथार्थवाद अस्तित्ववाद, बीट पीढ़ी, भूखी पीढ़ी, अकविता, प्रकृतिवाद, आधुनिकता, आत्मनिर्वासित, असाहित्यिकता, औत्सुक्य, जनचरित्री कविता।

प्रस्तावना

हिंदी कवि राजकमल चौधरी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व विरोधाभासपूर्ण है। उनके काव्य में वैयक्तिकता एवं सामाजिकता की विरोधाभासपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। उनके काव्य में उपलब्ध कुछ अंतर्विरोध यथार्थ हैं तो कुछ आभासी हैं। प्रत्येक कवि की अपनी शक्तियाँ और सीमाएँ होती हैं। सामाजिक जीवन के भयावह यथार्थ की प्रभावशाली अभिव्यक्ति राजकमल चौधरी की काव्यात्मक उपलब्धि है, जबकि दूसरे स्तर पर कथ्य, शिल्प एवं भाषा संबंधी परंपरा–भंजन को पाठकों एवं आलोचकों के एक वर्ग ने 'काव्य–दोषों' के अंतर्गत रखा है। नवप्रस्थानित कवि के रूप में उनकी कविता पर तटस्थ एवं संतुलित ढंग से विचार करने की आवश्यकता है। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए विषय की प्रस्तावना की गई है।

अध्ययन का उद्देश्य

राजकमल चौधरी की कविता में योग्यता एवं सक्षमता होने के साथ ही जटिलता भी मौजूद है। असामान्य संश्लिष्टता के कारण उनकी कविता को 'अपाठ्य' और 'अकविता' की श्रेणी में रखने की वकालत की जाती रही है। समय की मांग यह है कि अब उनकी कविता के साथ न्यायोचित व्यवहार किया जाना चाहिए। आज अकारण और अनायास दोषारोपण का युग नहीं है। राजकमल चौधरी की कविता का सतर्क एवं तथ्यानुमोदित मूल्यांकन करना ही इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है।

परिकल्पना

राजकमल चौधरी की हिंदी कविता आत्म–स्थापन की कविता मानी जाती है। उस पर अश्लीलता और अराजकता का आरोप भी लगाया जाता है। उनकी कविता की भाषा को अकाव्यात्मक माना जाता है। तथ्य को देखते हुए उक्त दोषों का परिहार किया जा सकता है। उनकी कविता में व्यक्ति–करण के साथ ही सामाजिक प्रतिबद्धता के दर्शन होते हैं। विद्रूपता का नग्न चित्रण स्थिति को यथार्थपरक बनाने के साथ ही कविता को प्रभावशाली बनाने के लिए किया

गया है। कविता में निषेधात्मक वृत्ति की अभिव्यक्ति निषिद्ध तत्त्वों के विरूद्ध साहसिक आक्रमण का परिचायक है। राजकमल चौधरी की कविता में अभिव्यक्त अराजक और विद्रोही तत्त्वों को मूल्यहीनता का पर्याय मानना उचित नहीं है। उनकी कविता व्यापक राजनीतिक चेतना से संपन्न है इसलिए वह व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन से संबंधित अनैतिकता, मूल्यहीनता और मुखौटाधर्मिता का पर्दाफाश करती है तथा सरल और नैतिक जीवन की वकालत करती है। ऐतिहासिक दृष्टि से उनकी कविता स्वप्न–भंग–जन्य आक्रोश और विद्रोह की कविता है। यह तटस्थ समाज निरपेक्ष अकविता नहीं है।

शोध–विधि

यहाँ शोध अभिकल्प के रूप में मनन पर आधारित शोध की निरूपणात्मक, व्याख्यात्मक एवं मूल्यांकनपरक विधियों का उपयोग किया गया है। तथ्यपरक आलोचनात्मक विधि और शोधपरक वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक विधि ही इस अध्ययन के मुख्य आधार हैं।

शोध–सामग्री

इस शोध के लिए उपजीव्य ग्रंथ के रूप में देवशंकर नवीन द्वारा आठ भागों में संपादित 'राजकमल चौधरी रचनावली' का उपयोग किया गया है,जबकि सहायक ग्रंथ के रूप में डॉ. नामवर सिंह कृत 'कविता के नये प्रतिमान', डॉ. नन्दकिशोर नवल कृत 'समकालीन काव्य–यात्रा', डॉ. लक्ष्मीनारायण सुधांशु कृत 'जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत', डॉ. नरेंद्रदेव वर्मा द्वारा संपादित पुस्तक 'आधुनिक पाश्चात्य काव्य और समीक्षा के उपादान', डॉ. ब्रह्मदेव मिश्र कृत 'धूमिल और उनका काव्य–संघर्ष', देवशंकर नवीन द्वारा संपादित पुस्तक 'बर्फ और सफेद कब्र पर एक फूल', डॉ. रामअवध द्विवेदी कृत 'साहित्य–सिद्धांत' का उपयोग किया गया है। इन सबके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य कोश, समाज विज्ञान विश्वकोश और हिन्दी के अभिव्यक्ति कोश (हिन्दी थिसारस) आदि से भी सहायता ली गई है। अन्य सहायक सामग्रियों के लिए इंटरनेट का उपयोग किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण

राजकमल चौधरी के काव्य को विवादास्पद माना जाता है क्योंकि उनके जीवन और कविता में अन्तर्विरोध के लक्षण मौजूद हैं। उनके अन्तर्विरोधों को समझने के लिए रचनात्मक परिवेश की शक्ति और सीमा को समझना जरूरी है। अपने छोटे से जीवन–काल में उन्होंने काफी पढ़ा, अनुभव किया और लिखा। जितनी तेजी से यह सब किया गया, उसमें उन्हें सुविधाएँ कम उपलब्ध हुईं, जबकि असुविधाओं की भरमार रहीं। उनका युग भी अत्यंत तेज गति से संक्रमण की दिशा की ओर बढ़ रहा था। सबकुछ अराजकता और अस्थिरता के दौर से गुजर रहा था। साहित्य, समाज, नैतिक मूल्य और मानवीय परिस्थिति की स्थिति में भी तेजी से परिवर्तन हो रहा था। संक्रान्तिकाल के नव प्रस्थानित कवि और सामाजिक व्यक्ति के रूप में राजकमल चौधरी को वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में अनेक मोर्चों पर एक साथ जूझना पड़ा। जूझने की प्रक्रिया में उन्होंने बहुत कुछ खोया भी और पाया भी। राजकमल चौधरी को कवि के रूप में जो कुछ प्राप्त हुआ, इसके लिए उन्हें बड़ी कीमत चुकानी पड़ी।

राजकमल चौधरी के काव्य और जीवन को एक साथ जोड़कर देखना जरूरी है, क्योंकि ये दोनो चीजें अलग–अलग नहीं हैं। इसे सौभाग्य और दुर्भाग्य दोनों माना जा सकता है। राजकमल चौधरी के संबंध में डॉ. नामवर सिंह का वक्तव्य द्रष्टव्य है, ''मैं राजकमल चौधरी को बहुत कम जानता हूँ। लेकिन मुझसे राजकमल के बारे में जो बातें बताई गई थीं– मिलने पर राजकमल मुझे बिल्कुल दूसरा ही लगा। सबसे अलग। राजकमल की जिंदगी एक आईने की तरह थी। उसमें हम सबकुछ साफ–साफ देख सकते हैं। राजकमल ने जो कुछ भी लिखा, वह उससे भी महान था। लेकिन हिंदी में 'अनुभव की प्रामाणिकता' वाली प्रवृत्ति को हमें रोकना चाहिए, क्योंकि कोई जरूरी नहीं कि लेखक जैसी कहानियाँ लिखे, वैसी ही जिंदगी जिए। व्यक्तिगत जीवन में लेखक कुछ भी हो सकता है, लेकिन उसकी कहानियाँ काफी अच्छी हो सकती हैं। अगर जैसा लिखे, वैसी जिंदगी जिए वाली बात हम समाप्त नहीं करेंगे तो राजकमल की तरह टूटने वालों का एक लंबा सिलसिला चालू हो जाएगा। वैसे मुक्तिबोध और राजकमल चौधरी ने दिखा दिया कि वे वैसी ही जिंदगी जी भी सकते हैं, जैसी कि वे कहानियों में खींचते आए हैं।''[1]

राजकमल चौधरी को किसी भी कीमत पर राजकमल चौधरी बनना था। इसलिए उन्होंने इतनी कीमत चुकायी। उन्हें किसी भी कीमत पर समकालीन और सच्चे अर्थों में आधुनिक कवि की भूमिका निभानी थी। उनमें बुद्धिजीवी की कायरता नहीं थी। वे असामाजिकता की हद तक जानेवाले दुःसाहसी साहित्यकार थे। उनके रहन–सहन और परिवेश ने उक्त दिशा में बढ़ने की प्रेरणा दी। राजकमल चौधरी ने 'समकालीन हिंदी लेखकः जीवन–बोध : प्रतिबद्धता' शीर्षक वैचारिक निबंध में लिखा है, ''लेखक– जो कोई भी सही अर्थ में आधुनिक है और बुद्धिजीवी है, उसे अपने जीवन और अपने समाज के हर मोर्चे पर पूरी सच्चाई, पूरी ईमानदारी के साथ पक्षधर होकर, क्रांतिकारी होकर, अपने वर्ग, अपने समूह, अपने जुलूस का मुखपात्र, प्रवक्ता होकर सामने आना होगा– उसे आखिरी कतार में सिर झुकाए हुए खड़े रहना नहीं होगा।''[2]

राजकमल चौधरी वर्ग–चेतना–संपन्न, बौद्धिकता युक्त व्यापक राजनीतिक दृष्किोण वाले कवि हैं। लेकिन उनके काव्य में जीवन के आंतरिक और वैयक्तिक पक्ष की अभिव्यक्ति का भी अभाव नहीं है। उन्होंने वैयक्तिक एवं आंतरिक पक्ष के साथ ही सामाजिक तथा वाह्य पक्ष की समन्वित अभिव्यक्ति पर बल दिया है। समर्थ कवि अपनी वैयक्तिकता को सामाजिकता से जोड़कर प्रस्तुत करता है। इसी प्रक्रिया के द्वारा वह अपने कथ्य को व्यापक बनाने में सफल होता है। इस क्षमता के अभाव में कविता असामाजिक हो जाती है। इस संदर्भ में प्रसिद्ध आलोचक डॉ. लक्ष्मीनारायण सुधांशु का मत है, ''आत्मभाव के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि वह एक अन्विति है। एक व्यक्ति की विशेषता को अन्विति के सिद्धांत के रूप में न माना जाय, तो काव्य के विधान में कलाकार के आत्मभाव की व्यापकता नहीं मानी जा सकती।''[3]

वस्तुतः राजकमल चौधरी के काव्य पर आत्मग्रस्तता का जो आरोप लगाया जाता है, वह उनके शब्दों में 'व्यक्ति–करण' है। उन्होंने 'व्यक्ति–करण' से रहित 'सामाजिकता' को एकांगी माना है। जगत्–बोध और आत्मबोध के समन्वय से उनका काव्य पूर्णता प्राप्त करने में सफल रहा है।

राजकमल चौधरी के काव्य पर मूल्य–निरपेक्षता, अराजकता और असामाजिकता का आरोप भी लगाया जाता है। उक्त आरोपों को ध्यान में रखते हुए उनके काव्य पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में मुखौटाधर्मिता और मूल्य संबंधी ढकोसले तथा झूठ का पर्दाफाश किया है। मूल्य के नाम पर दोहरे आचरण का विरोध करना उनकी कविता का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है। लकीर का फकीर होना, परंपरा के नाम पर सबकुछ को आत्मसात कर लेना तथा लीक पीटना उनकी रचनाधर्मिता के विरूद्ध है। इस दृष्टि से उनका काव्य महान् न होकर विराट् है। उन पर पूरब–पश्चिम में घटित होने वाले ज्ञान के उन्मेष का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। राजकमल के लेखन को संस्कार युक्त लेखन की श्रेणी में रखने के बजाय व्यापकता, विविधता और नवोन्मेष की श्रेणी के अंतर्गत आनेवाला लेखन मानना अधिक उचित होगा। डॉ. लक्ष्मीनारायण सुधांशु ने लिखा है, ''भारतीय काव्य महान् है, विराट् नहीं। यह इस कारण कि भारतीय जनता अपने जीवन को विराट् की अपेक्षा महान् देखना चाहती है। जिस दिन भारतीय जीवन में यूरोपीय जीवन की तरह विराट् भावना, विराट् कल्पना की गुंजाइश होने लगेगी, उस दिन यहाँ के काव्य की रचना भी उसी दिशा में होगी। कुछ दिन पहले हमारे काव्य में किसी उपेक्षिता, विधवा या पतिता का कोई स्थान न था, पर अब ऐसे युग का निर्माण हो रहा है कि व्यक्ति के शील–सद्‌गुण पर जाति–जन्म का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।''[4]

राजकमल चौधरी की कविता मूलतः समाज विरोधी, मूल्य विरोधी और अराजकतावादी नहीं है। वह जड़ता–विरोधी, अप्रगतिशीलता–विरोधी और रूढ़ि–विरोधी अवश्य है। वह परिवर्तन और नवीनता का समर्थन करती है। इस दृष्टि से उनकी कविता क्रातिकारिणी है। उनके लिए सामाजिक चेतना का परिवर्तन अधिक जरूरी और महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए समाज का मुखापेक्षी होना जरूरी नहीं है। इस अर्थ में उनकी कविता 'असामाजिक' और बँधी–बँधाई मर्यादा का विरोधी है। वह सत्यवादिनी है। नवीन मूल्यान्वेषण और क्रांतिकारी परिवर्तन की दृष्टि से उनकी कविता हिंदी साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। उनकी कविता परंपरावादी न होकर आधुनिकतावादी है। उनकी आधुनिकता व्यापक, क्रांतिधर्मी और जनचरित्री है। उनके काव्यात्मक नवोन्मेष के पीछे समाज के नव–निर्माण की आकांक्षा है। यही कारण है कि राजकमल चौधरी की हिंदी कविता का चरित्र एकदम बदला–बदला–सा नजर आता है। इस बदलाव को डॉ. लक्ष्मीनारायण सुधांशु के एक कथन के आलोक में समझा जा सकता है, ''साधारण जीवन में सुख–दुःख सदा बने ही रहते हैं, इसलिए सदा वे सत्य रहते हैं। काव्य में ऐसे जीवन की बड़ी उपयोगिता है। सत्य का तत्त्व शाश्वत है। वह कभी साधारण या असाधारण नहीं हुआ करता है– सदा एकरस रहता है। यही एकरसता काव्य के स्थायित्व में योग देती है। काव्य–विधान के संक्रांतिकाल में यह विपर्यस्त नहीं होती, केवल बँधी हुई मर्यादा पर थोड़ा आघात पहुँचाती है और यदि यह आघात किसी निपुण कलाकार की लेखनी द्वारा पहुँचे तो उसकी एक मर्यादा बँध जाती है।''[5]

राजकमल चौधरी के जीवन और काव्य के बीच अंगांगी भाव संबंध है। इसलिए उन्हें एक–दूसरे से अलग करके देखना उचित नहीं है। उनके काव्य में मनुष्य और व्यक्ति की महानता से अधिक उनकी दुर्बलताओं को उभारा गया है। ऐसी ही मानवीय दुर्बलताओं से निर्मित उनका मानव–समाज है। यह जीवन और जगत् का यथार्थ चित्र है। आदर्श चित्र और चरित्र का अभाव वास्तविक जीवन और समाज की सच्चाई है। कृत्रिम ढंग से ऐसे चरित्र और समाज का चित्र खींचना राजकमल चौधरी का काव्य–प्रयोजन नहीं है। यह काव्य के रसात्मक बोध का नया क्षेत्र है। यह संक्रांतिकालीन जीवन और काव्य की देन है। उनकी कविता नये सौंदर्यबोध को जगाती है। वह मिट्टी के पात्र में सुधा के समान उपयोगी और मूल्यवान है। डॉ. लक्ष्मीनारायण सुधांशु के कथन से राजकमल चौधरी के काव्य को समझने में मदद मिल सकती है। उन्होंने लिखा है, ''मिट्टी के पात्र में सुधा रख देने से सुधा का मूल्य कम नहीं होता। स्वाभाविक गति से जीवन में जो महानता आ सकती है, केवल उसी पर काव्य का अधिकार होना चाहिए। मानवीय दुर्बलताएँ मनुष्य को महान् बनने से बहुत–कुछ रोक सकें, पर काव्य–जगत् से वे बाहर नहीं रह सकतीं। दुर्बलताओं का ही तो समाज बना करता है। अब तक विश्व की किसी जाति ने महानता का समाज स्थापित नहीं किया। आदर्शवादी काव्य महानता का प्रलोभन दे सकता है, पर उस प्रलोभन के निकट काव्य के टिकने की कोई निष्चित संभावना नहीं। यही कारण है कि सामाजिक जीवन की संक्रांति की छाया काव्य पर पड़े बिना नहीं रह सकती। बिना किसी व्यक्तिगत दोष के कारण समाज में जिसका स्थान नितान्त निम्न कोटि का है, काव्य में उसी पात्र का चित्रण प्रायः सुधरे रूप में मिलता है।... प्रगतिशील जीवन के जो चित्र अभी काव्य में आ रहे हैं, उनके प्रति पाठक कुछ दिनों तक भले ही केवल शील–द्रष्टा के रूप में रहें, पर अब वह युग आ रहा है, जब उनमें भी रसानुभूति प्रतीत होगी।''[6]

राजकमल चौधरी के काव्य में यथार्थ का निरूपण विलक्षण ढंग से किया गया है। उनका ढंग परंपरा से हटकर है। शिल्प और भाषिक–संरचना के स्तर पर उनकी विलक्षणता स्पष्ट रूप से लक्षित की जा सकती है। इस विलक्षणता के पीछे युग की परिवर्तनशीलता का योग है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि नये शिल्प और नयी शब्दावली के माध्यम से परंपरावादी मूल्यों को व्यक्त करना न उचित है, न संभव है। यथार्थ के निरूपण की उनकी अपनी पद्धति है, जिससे उनके काव्य की स्वतंत्र पहचान बनी है। डॉ. रामअवध द्विवेदी के कथन पर गौर काने से स्थिति और स्पष्ट हो जाती है। उनके अनुसार, ''निरूपण की क्रिया परिवर्तन की धात्री है, चाहे अन्तर

कम हो या अधिक। जब फोटोग्राफर छायाचित्र खींचता है तब वह यथार्थ की प्रतिकृति मात्र नहीं तैयार करता। प्रत्येक छायाचित्र का एक विशिष्ट विन्यास होता है, उसकी अपनी पृष्ठभूमि होती है और जो दृश्य वह प्रस्तुत करता है, वह स्थिर एवं सीमाओं में बँधा होता है। यथार्थ इससे बिल्कुल भिन्न है। इसी प्रकार साहित्य–निरूपण और यथार्थ में अंतर अनिवार्य है। निरूपण–सामग्री को शैली में निबद्ध करता है।''[7]

यदि विकृति और विद्रूपता सामाजिक जीवन और व्यक्ति के जीवन का यथार्थ है तो उसका चित्रण करना भी कवि के लिए जरूरी है। राजकमल चौधरी ने सामाजिक जीवन की विसंगतियों के प्रति भयंकर आक्रोश व्यक्त किया है। उनकी प्रतिक्रिया में आक्रामकता का भाव घृणा में बदल गया है। यहाँ सकारात्मक परिवर्तन की भावना उत्प्रेरक का काम करती है। जीवन–यथार्थ को नंगी सच्चाई के रूप में सामने लाने के लिए उन्होंने बँधी–बँधायी मर्यादा का उल्लंघन किया है। उनके काव्य में व्यक्त नंगेपन को अश्लीलता मानना उचित नहीं है। इस वर्णन के पीछे निहित प्रेरणा को ध्यान में रखकर विचार करने से इस 'काव्य–दोष' का परिहार हो जाता है। ऐसा भी नहीं है कि इस प्रकार का वर्णन साहित्य में पहली बार किया गया है। कल्पना–मिश्रित यथार्थ की अपनी खूबसूरती होती है। नंगा यथार्थ भद्दा, कुरूप और घृणास्पद होता है। यथार्थ के पहले प्रकार को आदर्शोन्मुख यथार्थ कहते हैं तो दूसरे को प्रकृतिवाद की श्रेणी में रखा जाता है। इन दोनों दृष्टियों से विचार करने पर राजकमल चौधरी की हिंदी कविता का यथार्थ आदर्शवादी यथार्थ से दूर और प्रकृतिवादी यथार्थ के करीब पहुँच जाता है। लेकिन उनकी कविता में व्यक्त यथार्थ बिल्कुल वही नहीं है। उसमें आधुनिक युग की परिवर्तित पृष्ठभूमि का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। अतः कहा जा सकता है कि राजकमल चौधरी की हिंदी कविता में यथार्थ के चित्रण–क्रम में यथार्थ को कल्पना के सहारे खूबसूरत बनाने की कोशिश नहीं की गयी है। यहाँ कवि किसी प्रकार के थोपे गये आदर्श या मूल्य से प्रेरित न होकर यथार्थ को अनगढ़ रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसलिए वह 'अश्लील' और 'अरूचिकर' हो गया है। इन सबके बावजूद इसे साहित्य–क्षेत्र से बाहर की वस्तु नहीं माना जा सकता है। डॉ. रामअवध द्विवेदी ने इसे यथार्थ–चित्रण का ही अंग माना है। उनके अनुसार, ''आदर्शोन्मुख अथवा कल्पना–सम्पृक्त यथार्थवाद का सीधा विरोध उस प्रणाली से है, जिसके अंतर्गत वैज्ञानिक पद्धति पर तथ्यों का निरीक्षण एवं निरूपण होता है। आदर्श और कल्पना के पुट उसके लिए निष्प्रयोजन एवं अनर्गल सिद्ध होते हैं, नैतिकता अथवा आदर्शवादिता का प्रश्न ही नहीं उठता। इस प्रकार के आत्यन्तिक यथार्थवाद के अनुयायियों का विश्वास है कि वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में कुरूपता और अश्लीलता ही सत्य है, षेष सबकुछ काल्पनिक, मनगढ़न्त। इसी धारणा के कारण घोर यथार्थवादियों ने साहित्य में अश्लीलता की हिमायत की है और उनकी रचनाओं में अनेक ऐसे स्थल मिलते हैं, जो शालीन अभिरूचि वालों के लिए असह्य मालूम पड़ते हैं। जब कभी साहित्य में अश्लीलता का प्रकाशन होता है अथवा विचारकों द्वारा उनका समर्थन किया जाता है, तब यही बात दुहराई जाती है कि जीवन का गर्हित पक्ष ही सत्य है और साहित्य का एकमात्र कार्य है वास्तविकता का निरूपण।''[8]

राजकमल चौधरी के काव्य का एकमात्र उद्देश्य नग्न यथार्थ का चित्रण करना नहीं है। अनैतिकता और अश्लीलता को बढ़ावा देना भी उनके काव्य का प्रयोजन नहीं है। नवाचार, नवीन मूल्यों का अन्वेषण और उन्हें व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का अंग बनाना ही उनके काव्य का परम उद्देश्य है। इस दृष्टि से उनकी मैथिली कविता को हिंदी कविता का पूरक माना जा सकता है, क्योंकि वहाँ वह सबकुछ है जो उनकी हिंदी कविता से विदके हुए लोगों को चाहिए। इस संदर्भ में प्रसिद्ध आलोचक नंदकिशोर नवल का मत ध्यातव्य है, ''राजकमल हिंदी के साथ–साथ मैथिली के भी लेखक थे। मैथिली में उन्होंने कहानियाँ भी लिखी हैं और कविताएँ भी। उनके हिंदी के सृजनात्मक लेखन और मैथिली के सृजनात्मक लेखन में एक स्पष्ट अंतर है। उनका हिंदी लेखन नगर केन्द्रित है और मैथिली लेखन ग्राम केन्द्रित। दोनों की अंतर्वस्तु में भी अंतर है। हिंदी लेखन में प्रायः मूल्यों के विघटन का चित्रण किया गया है, जबकि मैथिली लेखन में मूल्यों की स्थापना की गई है। हिंदी लेखन में अँधेरा ही अँधेरा है, जबकि मैथिली लेखन में उजाले की बहार है। स्वभावतः राजकमल का हिंदी पाठक जब उनकी मैथिली रचनाएँ पढ़ता है तो सोचने लगता है कि उनमें ऐसा विभाजन क्यों है? उनकी संवेदना इस तरह से बँटी हुई क्यों है? वे दो लेखक के रूप में क्यों सामने आते हैं और उनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति प्रामाणिक रूप में किस में हुई है– हिंदी में या मैथिली में? ऐसी बात नहीं है कि उनके मैथिली लेखन में दुख–दर्द, निराशा, क्रूरता, कामुकता आदि का चित्रण नहीं, लेकिन उसके बावजूद उसका संसार बहुत ही सजीव है। उसके चरित्र हिंदी लेखन के संसार की तरह आत्मनिर्वासित, संवेदनहीन और मृत नहीं। वे प्रेम, करूणा, वीरता आदि की भावनाओं के साथ ईर्ष्या और आत्मग्लानि से भी युक्त हैं। यह उनके मनुष्य होने का सबसे बड़ा प्रमाण है।... राजकमल के हिंदी लेखन और मैथिली लेखन में कोई विभाजन नहीं है। उनका मैथिली लेखन वस्तुतः उनके हिंदी लेखन का शेषपूरक है, जिसे जाने बिना उनके संपूर्ण रचना–संसार को जानना असंभव है। जिस सरल और नैतिक जीवन की चाह उनकी हिंदी रचनाओं में प्रकट होती रही है, वह उनकी मैथिली रचनाओं में मूर्तिमान है।''[9]

राजकमल चौधरी के जीवन और काव्य में अंतर्विरोध मौजूद हैं। एक मनुष्य के रूप में उनकी अपनी कमजोरियाँ थीं। उन कमजोरियों को स्वीकार करने से उन्हें परहेज नहीं था। खुले मन से विचार करने पर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व संबंधी विरोधाभासों को समझा जा सकता है। उनके काव्य को आकार देने में उनके जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से लेकर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों तक का समान रूप से योगदान रहा है। राजकमल चौधरी के जीवन और साहित्य संबंधी विरोधाभासों की चर्चा करते हुए डॉ. नंदकिशोर नवल ने लिखा है, ''इसी विरोध और खींचतान में, जिसमें एक ओर

वे स्वयं थे और दूसरी ओर उनका समाज, एक ओर सेक्स था और दूसरी ओर देश–विदेश की राजनीति, एक ओर मूल्यहीनता थी और दूसरी ओर मूल्यों की खोज एवं उनकी स्थापना, एक ओर अबाध स्वतंत्रता थी और दूसरी ओर जनता से प्रतिबद्धता, एक ओर बर्हिगमन था और दूसरी ओर प्रत्यागमन, एक ओर निष्क्रियता थी और दूसरी ओर क्रियाशीलता, एक ओर मृत्यु–कामना थी और दूसरी ओर उत्कट जिजीविषा, उनका जीवन और साहित्य दोनों चलते रहे।''[10]

राजकमल चौधरी को केवल निषेध और देह की राजनीति तक सीमित रहने वाला कवि मानना उचित नहीं है। वस्तुतः उन्हें जीवन और जगत् को प्रभावित करने वाली सभी चीजों को संज्ञान में लेकर विमर्श करने वाला कवि माना जा सकता है। उन्होंने राज–तंत्र, अर्थ–तंत्र और समाज–तंत्र के साथ ही सभ्यता–संस्कृति को अपने विमर्श के केन्द्र में रखकर साहित्यिक साधना की है। उनकी इसी साधना का सुपरिणाम उनका विपुल और वैविध्यपूर्ण साहित्य है। उनके साहित्य में बाह्य यथार्थ को अंतर्वृत्तियों के चित्रण के माध्यम से युक्ति संगत बनाकर प्रस्तुत किया गया है। अन्तर्वृत्तियों के चित्रण से ही साहित्य से संबंधित शलीलता–अश्लीलता और सुरूचि–कुरूचि के प्रश्न जुड़े हुए हैं। साहित्य में अन्तर्वृत्तियों के चित्रण की अनिवार्यता को सभी स्वीकार करते हैं। ऐसी स्थिति में शलीलता–अश्लीलता और सुरूचि–कुरूचि के प्रश्न गौण हो जाते हैं। इन सब चीजों से सौंदर्यबोध का गहरा संबंध है। साहित्यिक सौंदर्य अन्तर्वृत्तियों के चित्रण पर निर्भर करता है। जिस साहित्य में मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का जितना जीवंत और सार्थक चित्रण होता है, वह साहित्य उतना ही महत्त्वपूर्ण और आकर्षक होता है। ऐसे चित्रण में विधि–निषेध संबंधी किसी प्रकार की सीमा नहीं होती है। इन अवरोधों से प्रभावित होने पर रचना का साहित्यिक सौंदर्य नष्ट हो जाता है। इस संदर्भ में आलोचक प्रवर लक्ष्मीनारायण सुधांशु का मत द्रष्टव्य है, ''काव्य का प्रयोजन मनुष्य के केवल कर्मों के चित्रण से ही सिद्ध नहीं होता। जब तक अन्तर्वृत्तियों का विश्लेषण नहीं किया जाता, तब तक काव्य की उपयोगिता नहीं मानी जा सकती।... वृत्ति से किस कर्म की उत्पति हुई है, यही स्पष्ट करना काव्य का उद्देश्य है।... केवल कर्म को ही जीवन मानकर चलने से बड़ी–बड़ी बाधाएँ आ सकती हैं। जगत् में इन बाधाओं का मूल्य कुछ कम भी हो, किंतु काव्य में इन बाधाओं से बड़ी रूकावट पैदा हो सकती हैं; क्योंकि काव्य में प्रत्येक पात्र के प्रत्येक कर्म के प्रत्येक भाव का विश्लेषण नहीं होने से पाठक या श्रोता उसको हृदयंगम नहीं कर सकता।''[11]

राजकमल चौधरी की भाषा पर भी असाहित्यिकता और अश्लीलता का आरोप लगाया जाता है। इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि किसी भी कविता की भाषिक–संरचना का उसकी अन्तर्वस्तु से गहरा संबंध होता है। भाषा या षिल्प को आंगिक स्तर पर अन्तर्वस्तु से स्वतंत्र नहीं किया जा सकता है। विश्लेषण की सुविधा के लिए वैकल्पिक रूप से इन चीजों का अलग–अलग विश्लेषण करना अलग बात है, लेकिन आत्यन्तिक रूप से इन्हें अलग करना संभव नहीं है। भाषा, शैली, शिल्प–सबका सामूहिक आलम्बन प्राप्त कर रचना की अन्तर्वस्तु सफल और सार्थक रूप में सामने आती है। रचनाकार का व्यक्तित्व किस प्रकार उनके कृतित्व को प्रभावित करता है?– इसका उल्लेख करते हुए लक्ष्मीनारायण सुधांशु का कथन है, ''काव्य की षैली मस्तिष्क का विषय न होकर कलाकार की भाव–दशा, प्रवृत्ति, आकांक्षा तथा औत्सुक्य आदि को लेकर चलती है। जिन विषयों में मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का अभाव पाया जाता है, उनके आधार पर कलाकार के आत्मभाव का विश्लेषण करना संभव नहीं है।''[12] सुधांशु जी की यह भी मान्यता है, ''कवि में अनुभव करने और अनुभव को पदावली में व्यक्त करने की शक्ति भिन्न नहीं है। ग्रहण कल्पना और विधायक कल्पना के नाम से विश्लेषण के लिए हम एक विभाजन कर सकते हैं, किंतु दोनों का क्रम एक–दूसरे के साथ इतना मिला हुआ है कि कलाकार के जीवन में हम दो गतियाँ नहीं देख सकते।''[13]

राजकमल चौधरी की काव्य–भाषा और शैली को कवि की भाव–दशा, प्रवृत्ति, आकांक्षा और औत्सुक्य से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। इन सबके पीछे कवि का मनोविज्ञान क्रियाशील रहता है। उनके काव्य की अन्तर्वस्तु और भाषा उनके मनोविज्ञान से अलग नहीं है। जहाँ तक इन सब चीजों के औचित्य का प्रश्न है, वह केवल साहित्यशास्त्र और नीतिशास्त्र का विषय न होकर जीवनशास्त्र से भी जुड़ा हुआ है। साहित्य का संबंध मनुष्य के जीवन और समाज से भी जुड़ा हुआ रहता है। बालजाक ने कहा है कि साहित्य जीवन से बड़ा नहीं हो सकता है। राजकमल चौधरी के काव्य को जीवन की दृष्टि से देखा जाना चाहिए। इसके लिए काव्यशास्त्र और नीतिशास्त्र की परंपरागत सीमा का अतिक्रमण करना जरूरी है। नये सौंदर्यशास्त्र की आवश्यकता पर बल देते हुए डॉ. नामवर सिंह ने मुक्तिबोध को उद्धृत करते हुए लिखा है, ''मुक्तिबोध जिसे 'नई कविता का आत्मसंघर्ष' कहते थे, वह नई कविता की आंतरिक असंगतियों के विरूद्ध आत्मीय संघर्ष था। वे 1938 के आसपास विकसित होने वाले सामाजिक संघर्ष और आंतरिक संघर्ष के सिद्धांत के प्रति निष्ठावान थे। उन्हें स्पष्ट दिखाई पड़ा कि परवर्ती काव्य में वह दोहरा संघर्ष क्षीण हो रहा है। इसके लिए उन्होंने काव्य में सृजन–प्रक्रिया के विश्लेषण पर बल दिया : उन्हें काव्य के क्षेत्र में बढ़ती हुई 'आत्मग्रस्तता' खतरनाक प्रतीत हुई। नई कविता में व्यक्त होने वाली कुण्ठा, निराशा, बेचैनी आदि पर उनकी आपत्ति नहीं थी, आपत्ति थी तो इस बात पर कि 'वह वास्तविक संदर्भों से हीन होकर, मानव–समस्या का रूप धारण नहीं कर पाती।' इस आत्मग्रस्तता का विश्लेषण करते हुए उन्होंने यह भी लक्ष्य किया कि इसके द्वारा एक 'जड़ीभूत सौंदर्याभिरूचि' का निर्माण हो रहा है, जिसके अंतर्गत एक खास काट के विषय, भाव, बिंब और शब्द ही स्वीकृत हैं। अपनी पैनी सामाजिक दृष्टि के द्वारा उन्होंने इस 'सौंदर्याभिरूचि' के वर्गीय आधार को भी स्पष्टतः देख लिया। उनके अनुसार यह 'सौंदर्याभिरूचि विशेष वर्ग की है, जिसे विशेष वर्ग ने विशेष परिस्थिति में ही अंगीकार किया है। और, उस अभिरूचि के अंतर्गत सेंसर काफी सक्रिय है। उस उच्च–मध्यवर्गीय सौंदर्याभिरूचि के अधीन

ही निम्न–मध्यवर्गीय कविजन, जाने–अनजाने, उस फ्रेम के कारण सेंसर लगाते रहते हैं।' और इस प्रकार वे अपने मानव–स्पंदन और मर्मानुभव से कटते रहते हैं। इसी सौंदर्याभिरूचि के चलते 'कर्कश विद्रोही स्वर अथवा क्रांतिकारी चंडता सौंदर्यजनक नहीं समझी जाती।''[14]

भाषा के भदेसपन और अश्लीलता का आरोप झेलने वाले धूमिल और राजकमल चौधरी के तत्संबंधी दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए डॉ. ब्रह्मदेव मिश्र ने ठीक लिखा है, ''इस नये सौंदर्यबोध को जनसामान्य से जोड़कर समाजवादियों ने इसे लिजलिजी आत्मरति से बचाये रखा जिसके शिकार पहले अतियथार्थवादी और बाद को अस्तित्ववादी हुए। परंपरागत सौंदर्यशास्त्र की रोमानी–आदर्शोन्मुख दृष्टि की प्रतिक्रिया में यथार्थवादी नजरिये के जितने भी सोच–बिन्दु उभरे, उनमें भाषा के भदेसपन को आजमाना सबसे जोखिम भरा था। एक तो, भदेस शब्द ही गैर सौंदर्यशास्त्रीय अर्थ का वाहक है; दूसरे, जुड़ी है उसके साथ संलग्न प्रतिक्रियात्मकता। इन्हें नियंत्रित कर रचनात्मक उद्देश्य से जोड़ना क्या आसान है? प्रतिक्रिया को बिना किसी महत् उद्देष्य से जोड़े, उसे रचनात्मक त्वरा नहीं दी जा सकती। इस पर गौर किये बिना, इसे धड़ल्ले से आजमाया गया। परिणाम क्या हुआ? हिन्दी के कितने ही रचनाकार इसकी फिसलन में रपट गये। और यह हुआ, किसी बिन्दु–विशेष के प्रति अतिरिक्त सजगता के कारण –ताकि रातोंरात ख्याति पायी जा सके। कविता को खाने–कमाने की चीज न मानने के फलस्वरूप धूमिल इस रपटन से बचा रहा। राजकमल चौधरी के साक्ष्य से, उसे इस दिशा में बड़ी मदद मिली। अपने अन्तर्मन में उद्वेलित प्रतिक्रिया को वैचारिक संगति देकर उसने उसके अतिरिक्त उत्साह को शामिल करने का गुरूतर प्रयास किया। फलस्वरूप अश्लीलताबोधक एवं अकाव्यात्मक कहे जानेवाले शब्दों के माध्यम से समकालीनता को एक स्पष्ट अर्थ देने के महत्तर कार्य में सफलता प्राप्त कर सका। अष्लील कहे जानेवाले शब्दों के षब्दकोषीय अर्थ पर ध्यान केंद्रित कर उन्हें अकाव्यात्मक कहने तथा नाक–भौं सिकोड़ने की प्रवृत्ति अब सर्वथा अप्रासंगिक हो गयी है। कारण, उससे संदर्भगत सच्चाई का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता, जो आज की रचनात्मकता के लिए सर्वोपरि है। अतः शब्दों के काव्यगत प्रयोग को समूची काव्य–संरचना की संगति में देखना ही समीचीन है।''[15]

उक्त चिंतन पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जात है कि समकालीन कविता की रचनात्मक आवष्यकता के अनुरूप भाषा का प्रयोग करना राजकमल चौधरी की प्राथमिकता थी। उन्होंने भाषा के क्षेत्र में जिस नवाचार का प्रणयन किया उसे काफी हद तक साधने का भी प्रयास किया। सामाजिक संदर्भ से जुड़े होने के कारण ही उनकी काव्यभाषा का भदेसपन भी सार्थकता प्राप्त करने में सफल रहा। अन्य समकालीन कवियों के अतिरिक्त धूमिल को उन्होंने सर्वाधिक प्रभावित किया।

राजकमल चौधरी की कविता को सही संदर्भ में समझने के लिए उनके कुछ काव्य–अध्येताओं के अभिमत द्रष्टव्य हैं–

देवशंकर नवीन के आलेख 'राजकमल चौधरी के साहित्य में समाज का सच' के अनुसार, ''जीवन को जीवन–दृष्टि के साथ और अपनी विचारधारा तथा अपनी प्रतिबद्धता के साथ पूरा करने और जीवन की सार्थकता साबित करने के अपने–अपने हथियार, अपने–अपने तरीके होते हैं, राजकमल ने भी अपना हथियार और हथियार चलने का अपना तरीका चुना। जो बातें इन्होंने अपने कवि और अपनी कविता के बारे में कही है, वे इनके पूरे रचना संसार और पूरी सृजन–प्रक्रिया में लागू होती है।''[16] 'राजकमल चौधरी के बहाने' शीर्षक आलेख में प्रकाश ने लिखा है, ''राजकमल चौधरी साठोत्तरी कविता के समानांतर चलने वाली 'अकविता' धारा के कवि हैं। इस धारा के कवियों के साहित्य में मोहभंग और नकार का स्वर नये तेवर के साथ दिखाई देता है। दरअसल हर युग की अपनी ज्ञान मीमांसा होती है। वह मीमांसा साहित्य और समाज दोनों को प्रभावित करती है। रचनाकार जाने अनजाने उस मीमांसा के तहत साहित्य की रचना करता है। इस युग की मीमांसा थी लोकतंत्र का क्रिटिक करना। हर रचनाकार अपने–अपने तरीके से इस मीमांसा की पुष्टि कर रहा था। इस युग के अन्य कवियों के बरक्स राजकमल चौधरी का तरीका ज्यादा भदेस था। इसलिए उन्हें कई विद्वान बीमार मस्तिष्क का कवि भी मानते हैं। ये बीमार मस्तिष्क या भदेसपन उस युग की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों से पैदा हुआ। इस युग के सभी कवियों ने समाज के नग्न यथार्थ का चित्रण किया और नये तेवर के साथ रचना की। जिनमें प्रमुख रूप से धूमिल, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, राजकमल चौधरी, लीलाधर जगूड़ी, कैलाश वाजपेयी, सौमित्र मोहन, सर्वेष्वर दयाल सक्सेना, जगदीश चतुर्वेदी, मणि मधुकर, राजीव सक्सेना, कुमार विमल, वेणु गोपाल, आलोक धन्वा आदि। इन कवियों ने भ्रष्ट राजनैतिक तंत्र, शोषण पर आधारित समाज का खुलकर विरोध किया और आम आदमी के पक्ष में रचना की।''[17]

ओमप्रकाश झा ने देवशंकर नवीन द्वारा विरचित पुस्तक 'राजकमल चौधरी : जीवन और सृजन' की समीक्षा प्रस्तुत करते हुए लिखा है, ''यह विश्लेषणात्मक पुस्तक न केवल राजकमल चौधरी के जीवन और लेखन से संबंधित तमाम भ्रांतियों को साफ कर अपने समय के एक बड़े लेखक के कृतित्व की समृद्ध समालोचना प्रस्तुत करती है, बल्कि राजकमल के अध्येताओं को मूल्यांकन की एक चाबी भी थमाती है। जनजीवन की हताशा और शासकीय क्रूरताओं के जिस दौर की मानवीय संवेदना राजकमल के रचना संसार का मूल विषय है, उसमें साहित्य को कैसे पढ़े से अधिक प्रयोजनीय यह समझ है कि राजकमल–साहित्य को कैसे न पढ़े। इस पुस्तक से ये दोनों बातें पता चलती हैं।.... नई कहानी और नई कविता आंदोलन के दौर में रचनारत होने के बावजूद राजकमल चौधरी उनके रचनात्मक सूत्रों के प्रभामंडल में नहीं थे। किसी झंडे से बँधे बगैर उन्होंने अपनी रचनाधारा का अलग ही विधान अख्तियार किया, अपनी विशिष्ट छवि बनाई। यहाँ तक कि अकविता आंदोलन के पुरोधा कवि होने के बावजूद उस धारा से देर तक बँधे नहीं रहे। देवशंकर नीवन ने यहाँ राजकमल चौधरी की हिंदी और मैथिली की सभी विधाओं की रचनाओं पर गंभीरतापूर्वक विचार किया, और अध्येताओं को उनकी रचनाओं के मर्म

तक पहुँचने के आसान सूत्र दिए हैं।.... राजकमल चौधरी के जीवन और साहित्य में आत्मदर्शन और अस्तित्वबोध इस हद तक मौजूद है कि सही स्थिति का निरूपण एक श्रमसाध्य कार्य है। उनका मूल्यांकन पूर्वग्रह मुक्त हुए बिना असंभव था। खुद राजकमल ने जीवनपर्यन्त अपनी रचनाओं के माध्यम से पूर्वग्रह और दोहरे मानदंडों का खंडन किया। इस पुस्तक के एक अध्याय 'दोहरी जिंदगी नहीं चाहिए' में लेखक ने उनके लेखन और जीवन के साम्य का सांगोपांग वर्णन करते हुए निर्णय दिया है कि खुली किताब की तरह जीवन व्यतीत करने वाले राजकमल चौधरी सतत् मानव–जीवन के यथार्थ की खोज में लगे रहे।.... स्वातंत्र्योत्तर काल के मोहभंग के कारण समाज से कटकर आत्मकेंद्रित हो रही नई पीढ़ी की अगुआई करने वाले अग्रणी रचनाकार राजकमल चौधरी के जीवन और समग्र लेखन पर एकाग्र यह पहली और अबतक अकेली पुस्तक कोई आकाश कुसुम तोड़ लाई है, ऐसा दावा नहीं किया जा सकता, पर नई पीढ़ी के अध्येताओं को अब किसी भ्रांति का शिकार नहीं होना पड़ेगा, वे तटस्थ और सही मूल्यांकन की ओर अग्रसर होंगे, ऐसी आशा निश्चय ही की जा सकती है। देवशंकर नवीन की यह पुस्तक संभवतः साहित्यालोचन की वह जड़ता तोड़ेगी, जिसके लिए राजकमल चौधरी जीवन भर प्रयास करते रहे।''[18]

गजेन्द्र कुमार मीणा ने अपने 'राजकमल चौधरी की कविताओं में राजनीतिक चेतना' शीर्षक आलेख में लिखा है, ''राजकमल का जीवन, लेखन, मृत्यु सभी कुछ विवादास्पद हो गया। एक तरफ समीक्षकों ने उनके काव्य को अश्लील और अपाठ्य घोषित करते हुए कहा– अच्छा हुआ साला मर गया, पूरी न्यू राइटिंग को करप्ट कर रहा था तथा वह तो साला फ्रॉड था फ्रॉड। एक समय ऐसा भी आया जब उन्हें साहित्य की दुनिया से बाहर कर देने की साजिश की गई। संक्षेप में उनके साहित्य और व्यक्तित्व संबंधी जितने अपशब्द कहे जा सकते थे, कहे गए। दूसरी तरफ हिंदी की अनेक लघु पत्रिकाओं युयुत्सा, लहर, आधुनिका, दर्पण, निवेदिता, आरंभ, नई धारा अदि के अतिरिक्त मैथिली पत्रिकाओं ने राजकमल विशेषांक प्रकाशित किए, जिनमें प्रकाशित सभी लेख उन अपषब्दों का विरोध करते हैं और राजकमल की प्रशंसा। समकालीन कवियों ने उनके लेखन को संबोधित कर जितनी कविताएँ लिखीं, उतनी हिंदी के किसी बड़े से बड़े लेखक की मृत्यु पर शायद ही लिखी गई हो। इन दोनों पक्षों की सबसे बड़ी वजह राजकमल का खुला जीवन था जिसमें न दीवार, न दरवाजे, न खिड़कियाँ और न परदे थे। शायद इसी के चलते उन्हें अपने 37 वर्षों के अल्पजीवन में घोर उपेक्षा, अपमान और आत्मनिर्वाचन का शिकार होना पड़ा था। यह सब इसलिए हुआ क्योंकि वे अपनी पीढ़ी के कुछ थोड़े से ईमानदार कवियों और व्यक्तियों में से एक थे। उनकी इसी ईमानदारी की सजा उन्हें मरणोपरान्त भी मिलती रही, जिन्हें आज तक हिंदी जगत् ने संभवतः माफ नहीं किया है। उनकी गलती सिर्फ इतनी थी कि उन्होंने अपनी हर गलती को न केवल सार्वजनिक स्तर पर स्वीकार किया बल्कि उसे हू–ब–हू लिखा भी। .... साधारणतया राजकमल चौधरी का नाम लेते ही अश्लीलता, नग्नता और विद्रूपता अथवा कथ्य और टेक्नीक के धरातल पर अश्लील और अपाठ्य कवि दिखते हैं, जैसा कि कुछ कवि और समीक्षक बताते भी हैं। लेकिन वास्तविकता यह नहीं है। राजकमल की कविता की आलोचना करने वाले लोग प्रायः उनकी कविता में खुले शब्दों में सेक्स की चर्चा करने से बिदकते हैं। लेकिन उनकी कविताओं में केवल देह की राजनीति नहीं है। 'निषेध' एवं 'अकविता' के पक्षधर कवियों में राजकमल चौधरी का नाम उल्लेखनीय है। वे 'भूखी' और 'बीट' पीढ़ी का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। लेकिन राजकमल का महत्त्वपूर्ण कार्य कथ्य और टेक्नीक का एक नया धरातल स्थापित करना रहा। इस नये धरातल को उनके जीवनकाल में कम महत्त्व मिला, पर बाद में इसी कारण राजकमल को महत्त्वपूर्ण कवि तक घोषित किया गया। समकालीन लेखकों में इसे काफी लोकप्रियता भी मिली। यह कथ्य और टेक्निक अनैतिक नहीं है बल्कि परंपरागत मूल्यों का विध्वंस, राजनीतिक पूँजीवादी व्यवस्था से विद्रोह और नागरीय विद्रूपताओं का पर्दाफाश करता है। कुछ कविताएँ ऐसी भी है जो सामान्यतः बकवास–सी लगती हैं, किंतु जब राजकमल का मन्तव्य और कविता का मूल अर्थ खुलता है तब कविता की सार्थकता उभरती है। हो सकता है कि इसे कुछ विद्वान स्वीकार न करें, लेकिन यह सत्य है। वैचारिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर कई बार रचनाकार रद्द कर दिये जाते रहे हैं पर उनके अनुभव जगत में छिपा तनाव बावजूद इसके आने वाले समय के लिए भी प्रासंगिक बना रहता है– राजकमल चौधरी ऐसे ही कवियों में से एक हैं।''[19]

निष्कर्ष

राजकमल चौधरी के 'काव्य दोषों' पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें आत्यन्तिक रूप से दोष मानना वर्तमान संदर्भ में उचित नहीं है। इन चीजों से उनकी कविता की स्वतंत्र पहचान बनी है। इन्हें उनकी काव्यगत विशेषताओं में परिगणित करना ही उचित है। उन्होंने अपने काव्यगत विचार, भाव और भाषा के माध्यम से समकालीन कविता को गहराई से प्रभावित किया है।

सुझाव

समकालीन कविता की प्रगति को देखते हुए राजकमल चौधरी के काव्य का सम्यक् मूल्यांकन करना आवश्यक प्रतीत होता है। हिंदी कविता के सम्यक् बोध के लिए उनकी मैथिली कविता का भी सांगोपांग अध्ययन किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *चौधरी, राजकमल : बर्फ और सफेद कब्र पर एक फूल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2006, पृ.सं.–365,*
2. *वही, पृ.सं.–111,*
3. *सुधांशु, डॉ. लक्ष्मीनारायण : जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, संस्करण : 2000, पृ.सं.–36,*
4. *वही, पृ.सं.–34–35,*
5. *वही, पृ.सं.–33,*
6. *वही, पृ.सं.–35,*

7. *द्विवेदी,डॉ. रामअवध :साहित्य–सिद्धांत,बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्,पटना,संस्करण:1983,पृ.सं.–126–127,*
8. *वही, पृ.सं.–127–128,*
9. *नवल, डॉ. नन्दकिशोर : समकालीन काव्य–यात्रा : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2004, पृ.सं.–225–226,*
10. *वही, पृ.सं.–228,*
11. *सुधांशु, डॉ. लक्ष्मीनारायण : जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, संस्करण : 2000, पृ.सं.–35,*
12. *वही, पृ.सं.–36,*
13. *वही, पृ.सं.–37,*
14. *सिंह, डॉ. नामवर : कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1995, पृ.सं.–92,*
15. *मिश्र, डॉ. ब्रह्मदेव : धूमिल और उसका काव्य–संघर्ष, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 2012, पृ. सं.–85,*
16. *नवीन, देवशंकर :Sunday, July 12, 2009 : http://deoshankarnavin.blogspot.in/2009/07/blog-post. html*
17. *प्रकाश : जनता का आदमी, Saturday, January 19, 2013 : http://jantakaaadmi.blogspot.com/2013/01 /blog-post_19.html*
18. *झा, ओमप्रकाश : जनसत्ता, November 30, 2014 : http://jansatta.com/sunday-column-rajkamal-ka-sansar/6939*
19. *मीणा, गजेन्द्र कुमार: रचनाकार, 13 दिसंबर 2009, http://rachanakar.org/2009/08/blog-post_ 740.html*